International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
Vol. 4, Issue 1, January 2017 Impact Factor- 5.414
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
© Associated Asia Research Foundation (AARF) Publication
Website: www.aarf.asia Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

आध्यात्मिक गुरू स्वामी विवेकानन्द के जनउपदेशों की प्रभावशीलता

[1] डॉ. मन्जू जौहरी, एसोसिएट प्रोफेसर, डी. वी. सी. उरई

[2] बिमल कुमार, शोधार्थी, इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय, झाँसी

सामान्य परिचय

स्वामी विवेकानन्द जी का जन्म सन् 1863 में जनवरी माह की 12 तारिख (मकर संक्रान्ति संवत् 1920) में 6 बजकर 50 मिनट को कलकत्ता के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। विवेकानन्द जी के दादा स्व. श्री दुर्गाचरण दत्त जी संस्कृत और फारसी के विद्वान थे। विवेकानन्द जी के पिता श्री विश्वनाथ दत्त जोंकि कलकत्ता हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील थे। स्वामी जी के माता भुवनेश्वरी देवी (श्री नदंलाल बसु की एकमात्र संतान) धार्मिक विचारों की महिला थीं, जिनका अधिकांश समय भगवान शिव की पूजा–अर्चना में व्यतीत होता था। स्वामी विवेकानन्द जी के नौ भाई–बहिन थे, स्वामी जी की पारिवारिक स्थिति तत्कालीन समय में कलकत्ता के कुलीन व सम्पन्न परिवारों में से थी।

माता भुवनेश्वरी देवी ने स्वामी जी नाम प्रारम्भ में वीरेश्वर रखा, वे इन्हें वीरेश्वर शिव का ही वरद पुत्र मानती थी, किन्तु बाद में परिवार के लोगों ने स्वामीजी का नाम नरेन्द्रनाथ रख दिया जोंकि समयपरोन्त नरेन पड़ गया। यही नरेन सासारिक बंधनों से मुक्त होकर आध्यात्म–क्षेत्र में समर्पित होने के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए।

विवेकानन्द जी के पिता विश्वनाथ दत्त कोलकत्ता के उच्च न्यायालय में अटॉर्नी–एट–लॉ थे, विश्वनाथ दत्त जी पाश्चात्य सभ्यता में विश्वास रखते थे वे अपने पुत्र नरेन्द्र को भी अँग्रेजी पढ़ाकर पाश्चात्य सभ्यता के ढर्रे पर चलाना चाहते थे लेकिन आप एक विचारक, अति उदार, गरीबों के प्रति सहानुभूति रखने वाले, धार्मिक व सामाजिक विषयों में व्यवहारिक और रचनात्मक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति थे।

कलकत्ता के एक कुलीन परिवार में जन्मे नरेंद्रनाथ चिंतन, भक्ति व तार्किकता, भौतिक एवं बौद्धिक श्रेष्ठता के साथ–साथ संगीत की प्रतिभा का एक विलक्षण संयोग थे। परिवार के धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के प्रभाव से बालक नरेन्द्र के मन में बचपन से ही धर्म एवं अध्यात्म के संस्कार गहरे पड़ गए। माता–पिता के संस्कारों और धार्मिक वातावरण के कारण बालक के मन में बचपन से ही ईश्वर को जानने और उसे प्राप्त करने की लालसा दिखाई देने लगी थी।

ईश्वर के बारे में जानने की उत्सुक्ता में कभी–कभी वे ऐसे प्रश्न पूछ बैठते थे कि इनके माता–पिता और कथावाचक पंडितजी तक चक्कर में पड़ जाते थे। सन् 1884 में स्वामी विवेकानन्द जी

के पिता श्री विश्वनाथ दत्त की मृत्यु हो जाने के पश्चात् घर की जिम्मेदारी उन पर आ गयी, कुशल यही थी कि नरेंद्र का विवाह नहीं हुआ था।

आदर्श व्यक्तित्व

उन्तालीस वर्ष के संक्षिप्त जीवनकाल में स्वामी विवेकानन्द जो काम कर गये वे आने वाली अनेक शताब्दियों तक पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे। तीस वर्ष की आयु में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो, अमेरिका के विश्व धर्म सम्मेलन में हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व किया और उसे सार्वभौमिक पहचान दिलवायी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक बार कहा था–''यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़िये। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पायेंगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।''

रोमां रोलां ने उनके बारे में कहा था–''उनके द्वितीय होने की कल्पना करना भी असम्भव है, वे जहाँ भी गये, सर्वप्रथम ही रहे। हर कोई उनमें अपने नेता का दिग्दर्शन करता था। वे ईश्वर के प्रतिनिधि थे और सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेना ही उनकी विशिष्टता थी। हिमालय प्रदेश में एक बार एक अनजान यात्री उन्हें देख ठिठक कर रुक गया और आश्चर्यपूर्वक चिल्ला उठा–'शिव!' यह ऐसा हुआ मानो उस व्यक्ति के आराध्य देव ने अपना नाम उनके माथे पर लिख दिया हो।''

वे केवल सन्त ही नहीं, एक महान देशभक्त, वक्ता, विचारक, लेखक और मानव–प्रेमी भी थे। अमेरिका से लौटकर उन्होंने देशवासियों का आह्वान करते हुए कहा था–''नया भारत निकल पड़े मोची की दुकान से, भड़भूँजे के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार सेय निकल पडे झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।'' और जनता ने स्वामीजी की पुकार का उत्तर दिया। वह गर्व के साथ निकल पड़ी। गान्धीजी को आजादी की लड़ाई में जो जन–समर्थन मिला, वह विवेकानन्द के आह्वान का ही फल था। इस प्रकार वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के भी एक प्रमुख प्रेरणा के स्रोत बने। उनका विश्वास था कि पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्यभूमि है। यहीं बड़े–बड़े महात्माओं व ऋषियों का जन्म हुआ, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं–केवल यहीं–आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य के लिये जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है। उनके कथन–'''उठो, जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने नर–जन्म को सफल करो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये।''

उन्नीसवी सदी के अन्तिम वर्षों में लिया गया क्रान्तिकारी वेशधारी विवेकानन्द का एक दुर्लभ चित्र। यह चित्र देखकर उन्होंने कहा था–''यह चित्र तो डाकुओं के किसी सरदार जैसा लगता है।''

उन्नीसवीं सदी के आखिरी वर्षों में विवेकानन्द लगभग सशस्त्र या हिंसक क्रान्ति के जरिये भी देश को आजाद करना चाहते थे। परन्तु उन्हें जल्द ही यह विश्वास हो गया था कि परिस्थितियाँ उन इरादों के लिये अभी परिपक्व नहीं हैं। इसके बाद ही विवेकानन्द ने 'एकला चलो' की नीति का पालन करते हुए एक परिव्राजक के रूप में भारत और दुनिया को खंगाल डाला।

उन्होंने कहा था कि मुझे बहुत से युवा संन्यासी चाहिये जो भारत के ग्रामों में फैलकर देशवासियों की सेवा में खप जायें। उनका यह सपना पूरा नहीं हुआ। विवेकानन्द पुरोहितवाद, धार्मिक आडम्बरों, कठमुल्लापन और रूढ़ियों के सख्त खिलाफ थे। उन्होंने धर्म को मनुष्य की सेवा के केन्द्र में रखकर ही आध्यात्मिक चिंतन किया था। उनका हिन्दू धर्म अटपटा, लिजलिजा और वायवीय नहीं था। उन्होंने यह विद्रोही बयान दिया था कि इस देश के तैंतीस करोड़ भूखे, दरिद्र और कुपोषण के शिकार लोगों को देवी देवताओं की तरह मन्दिरों में स्थापित कर दिया जाये और मन्दिरों से देवी देवताओं की मूर्तियों को हटा दिया जाये।

उनका यह कालजयी आह्वान इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के अन्त में एक बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह खड़ा करता है। उनके इस आह्वान को सुनकर पूरे पुरोहित वर्ग की घिग्घी बँध गई थी। आज कोई दूसरा साधु तो क्या सरकारी मशीनरी भी किसी अवैध मन्दिर की मूर्ति को हटाने का जोखिम नहीं उठा सकती। विवेकानन्द के जीवन की अन्तर्लय यही थी कि वे इस बात से आश्वस्त थे कि धरती की गोद में यदि ऐसा कोई देश है जिसने मनुष्य की हर तरह की बेहतरी के लिए ईमानदार कोशिशें की हैं, तो वह भारत ही है।

उन्होंने पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद, धार्मिक कर्मकाण्ड और रूढ़ियों की खिल्ली भी उड़ायी और लगभग आक्रमणकारी भाषा में ऐसी विसंगतियों के खिलाफ युद्ध भी किया। उनकी दृष्टि में हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ चिन्तकों के विचारों का निचोड़ पूरी दुनिया के लिए अब भी ईर्ष्या का विषय है। स्वामीजी ने संकेत दिया था कि विदेशों में भौतिक समृद्धि तो है और उसकी भारत को जरूरत भी है लेकिन हमें याचक नहीं बनना चाहिये। हमारे पास उससे ज्यादा बहुत कुछ है जो हम पश्चिम को दे सकते हैं और पश्चिम को उसकी बेसाख्ता जरूरत है।

यह स्वामी विवेकानन्द का अपने देश की धरोहर के लिये दम्भ या बड़बोलापन नहीं था। यह एक वेदान्ती साधु की भारतीय सभ्यता और संस्कृति की तटस्थ, वस्तुपरक और मूल्यगत आलोचना थी। बीसवीं सदी के इतिहास ने बाद में उसी पर मुहर लगायी।

भारत में अंग्रेजी राज के दो सौ वर्षो के शासन काल में अराजकता एवं अव्यवस्था का साम्राज्य स्थापित हो गया था। देश में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक अनेक समस्यायें विद्यमान थी। मुगल साम्राज्य के अन्त के दिनों से ही विशाल साम्राज्य स्थापित हो गया था। इतिहास से पता चलता है कि ईसा की 18वीं सदी और 19वीं के प्रारम्भ में जितनी लड़ाइयाँ और रक्तपात भारत में हुआ उससे अधिक यूरोप में हुआ। मराठे, राजपूत और मुसलमान नरेश भी अपनी प्रजा की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। प्रायः समस्त अंग्रेज लेखक स्वीकार करते हैं कि ब्रिटिश भारत में भारतीय प्रजा के जानमाल की कोई रक्षा नहीं की जाती थी। निःसन्देह अराजकता और कुशासन अंग्रेजों के आने के पहले भारत में

मौजूद न थे। इतिहास साक्षी हैं कि अंग्रेजों के समय से ही भारत में शान्ति और समृद्धि दोनों का खात्मा हुआ।

स्वामी विवेकानन्द जी ने भारत और विश्व की अनेक समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया और सभी समस्याओं का सुनियोजित व क्रमबद्ध रूप में हल अर्थात् समाधान भी प्रस्तुत किया। स्वामी जी का विचार था कि भारत आन्तरिक रूढ़ियों कुसंस्कारों से यदि दूर हो जाये तो पुनः परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार एक सर्वश्रेष्ठ, सामाजिक परम्परा पुनः स्थापित करने के लिए स्वामी विवेकानन्द जी ने सभी सामाजिक समस्याओं पर विस्तृत रूप में अपने विचार व्यक्त किये।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य अग्रलिखित हैः

- स्वामी विवेकानन्द जी के जनउपदेशों की उपादेयता का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना।
- स्वामी विवेकानन्द जी के उपदेशों में 'शिक्षा' की महत्ता का अध्ययन करना।
- भारतीय समाज में पनपती कुप्रथा पर स्वामी विवेकानन्द के आक्षेपों का अध्ययन करना।

साहित्य पुनरावलोकन

किसी भी विषय पर शोध करने से पूर्व उस विषय से सम्बन्धित साहित्यिक पुनरावलोकन अति आवश्यक होता है। किसी भी क्षेत्र का साहित्य उस आधारशिला के समान होता है, जिस पर सपूंर्ण भावी शोध आधारित होता है यदि सबंधित साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा इस नींव को दृढ़ नहीं कर लेते तो यह शोध कार्य के प्रभावहीन एवं महत्वहीन होने की सम्भावना होती है अथवा उसकी पुनरावृति भी हो सकती है।

दत्ता, टी. एस. (1978) गोहाटी विश्वविद्यालय, गोहाटी से शिक्षाशास्त्र में पी. एच. डी. की उपाधि हेतु ''अद्वैत वेदान्त और महान सार्वभौतिक हृदय बुद्ध के सन्दर्भ में विवेकानन्द के दर्शन का अध्ययन'' नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था जिसके मुख्य निष्कर्ष निम्नवत है :–

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास, बुद्धि विकास, बुद्धि प्रगति व सर्वतोंमुखी पूर्णता चाहते थे।

स्वामी विवेकानन्द जी गहन विवेकशील, मननशील और निर्णयशील थे, उनकी आत्मा के अनेक पक्ष थे, जैसे हीरे में सुन्दरता व चमक दोनों होती है। एक पक्ष ने बुद्ध के मानवतावाद को प्रतिबिम्बित किया और दूसरा पक्ष जो शायद अधिक प्रभावशाली था ने शंकर के अद्वैत वेदान्त को ग्रहण किया।

भारतीय दर्शन का महत्व एक ही स्तम्भ पर नहीं टिका है इसमें कम से कम तीन स्तम्भ है अद्वैत वेदान्त, बुद्धवान और विवेकानन्द दर्शन।

भारतीय दर्शन त्रिपक्षीय था जिसका तीसरा पक्ष स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्तुत किया गया था। लेकिन यह दर्शन रामकृष्ण देव से उन्हें प्राप्त हुआ जो विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों के जनक बने।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय दर्शन का वृत्त खण्ड़ पूरा किया। जिसका प्रारम्भ वेद, उपनिषद, बुद्ध और शंकर ने किया था।

स्वामी जी मानव के उत्थान में सार्वभौमिक बन्धुत्व में विश्वास करते थे। चूँकि नवीन समाज की स्थापना राष्ट्रीय उद्देश्य और उन्हें विकास के साथ जोडने की प्राथमिक आवश्यकता है।

नैर, वी. एस. (1978) ने केरल विश्वविद्यालय, केरल से शिक्षाशास्त्र में पी. एच. डी हेतु **''स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार''** नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत् है :–

स्वामी विवेकानन्द का वैदिक आदर्शवाद कर्म का दर्शन था जिसमें शंकर का बुद्धित्व और बुद्ध का प्रेम मिला हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन नीतिशास्त्र, धर्म व नैतिकता का सम्मिश्रण था। जिसमें प्रकृतिवाद, प्रयोज नवाद की झलक दृष्टिगत थी। प्रत्येक विचारधारा ने मानव निर्माणकारी शिक्षा का योगदान दिया। उनके अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति था। उनका विश्वास था कि बौद्धिक उपलब्धि की तुलना में चरित्र अधिक महत्वपूर्ण था और अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों का महत्व अधिक था।

हिन्दू धर्म की उचित व्याख्या द्वारा विवेकानन्द ने जन समूह को अंध विश्वास से दूर करने का प्रयत्न किया।

स्वामी जी के अनुसार कोई भी अध्यापक छात्र को शिक्षित नहीं कर सकता क्योंकि वह अपनी प्रकृति के अनुसार बढ़ता है उनके द्वारा किए गए मानव मस्तिष्क के विश्लेषण (सत, राजस, तमस) के व्यवावहारिक प्रयोग का आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान पर महान प्रभाव है।

मार्क्स की तरह विवेकानन्द वर्ग–भदे के विरूद्ध थे परन्तु इतिहास में वर्णित भौतिकवादी स्वरूप के नहीं।

वेदान्त दर्शन से साम्यता रखते हुए विवेकानन्द का मानना था कि लोगों का सामाजिक, आर्थिक आरै राजनीतिक पुनर्निर्माण उन्हें उनकी चिन्ताओं से मुक्त करेगा और जीवन को सुखमय बनाएगा। उन्होनें मछुआरों और हल जोतने वाले लोगों को प्रकार्यात्मक साक्षरता अभियान हेतु आधुनिक प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का पूर्व ज्ञात प्राप्त कर लिया था।

पुथियल, जे. डी. (1980) ने बम्बई विश्वविद्यालय बम्बई से शिक्षा शास्त्र विषय में पी. एच. डी. हेतु **''स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक दर्शन''** नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत है :–

स्वामी जी ने शिक्षा को युवकों की शारीरिक स्वस्थता बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण के रूप में परिभाषित किया तथा धर्म का रूचि तथा विज्ञान व नैतिकता के साथ सम्बन्ध स्थापित किया।

स्वामी जी ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था का सर्वोत्तम रूप माना जिसमें स्वतंत्रता जिम्मेदारियों से पृथक न हो, जिसके साधन नैतिकता दर्शन कानून और इसी प्रकार के अन्य संसाधन विद्यमान रहे धर्म और स्वतंत्रता जिम्मेदारी का अन्तिम स्त्रोत है जिस पर लोकतान्त्रिक शिक्षा के लिए कार्यक्रम आधारित है।

भारवा, एस. एम. (1983) द्वारा सागर विश्वविद्यालय सागर से शिक्षा शास्त्र विषय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु **''स्वामी विवेकानन्द एवं लोकमान्य तिलक के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन''** नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था। जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत है :–

लोकमान्य तिलक एवं विवेकानन्द जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को इस योग्य बनाना था कि वह अपने अन्दर स्थित सर्वोत्तम शक्ति का अनुभव कर सके। बालक का अपना अस्तित्व भौतिक शरीर में अवस्थित है जिसमें मस्तिष्क भी है।

स्वामी जी का मानना था कि मनुष्य के अधिगम में ज्ञान ही प्रमुख है जो प्रमुखतया पशुओं के अधिगम से भिन्न है अधिगम ज्ञान की प्राप्ति की एक प्रक्रिया है जो मस्तिष्क से प्रारम्भ होती है न कि बाजार से। स्वामी जी के अनुसार शिक्षक का कार्य बालक के मस्तिष्क को उसकी शक्तियों के प्रति जागरूक करना तथा बाह्य संसार को इस जागरूकता के प्रति साधन स्वरूप प्रयोग करना। इस प्रकार अध्यापक वातावरण प्रदान नहीं करता वरन् बालक की सम्पदा, जो मनुष्य की स्वयं की शक्ति थी, उसका एहसास कराता है।

स्वामी जी की शिक्षा प्रणाली में ''सीखना'' का अर्थ बच्चे को किसी समस्या के सभी पहलुओं को प्रस्तुत करने के पूर्व कारण का पता लगाने के लिए चिंतन की ओर उन्मुख करना था।

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों का केन्द्र बिन्दु मानवता के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीयता पर केन्द्रित है, आपने भारत की दुर्दशा से व्यथित हो स्पष्ट किया है कि इस देश का क्या हाल हो गया है। घोर अन्धकार में अब सबको समान भाव से ढक लिया है। अब चेष्टता में दृढ़ता नहीं हैं, एवं आर्थिक शक्ति के रू‍प में उभरकरर विश्व की चौथी सबसे शक्तिशाली अर्थव्यवस्था बनने का तगमा हासिल कर रहा है वही दूसरी और देश में सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मानवीय मूल्यों में तेजी से पतन हो रहा है। वर्तमान बदलते परिदृश्य में भारतीय समाज व संस्कृति, जो संस्कारों की संस्कृति है; मूल्य, आदर्श और सिद्धान्तो की संस्कृति है; धार्मिक आस्था व कर्त्तव्यपरायणता की संस्कृति है; परोपकाराय सतां विभूतयः' का गुणगान करने वाली संस्कृति है आज भौतिकता की चकाचौंध में स्वार्थपरता, वैमनस्य, विद्वेष, प्रतिस्पर्धा, असंतोष, भोगों के प्रति समर्पण, निर्बलतअन्तः चेतना, सब कुछ

पाने की भूख, कभी न बुझने वाली प्यास और स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता केन्द्रित निर्लज्जतापूर्ण संस्कृति बनती जा रही है। इस सब स्थितियों को देखते हुये बदलते परिदृश्य में स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन की शिक्षायें तथा उनके संन्देश एवं विचारधारा हमारे लिये और भी मूल्यवान हो गई है, इसे आंकना सहज नहीं। यहां सबसे महत्वपूर्ण बात यह है की हमारे राष्ट्रीय जीवन का ऐसा कोई भी पहलू नहीं है। साथ ही ऐसी कोई समस्या नहीं हैं जिसका हल हमें उनके विचारों में न मिल पाता हो– वे समस्याएं चाहे किसी व्यक्ति की हो, समाज की हो अथवा देश की हो। उनके विचार सामान्य नहीं– शक्ति से भरपूर तथा ओजस्विता से पूर्ण है और यह ओजस्विता आध्यात्मिकता जनित हैं। यह निश्चय है। की स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से हमें उत्साह तथा आलौक प्राप्त होगा। जिससे हम राष्ट्र एवं मानवीय गरिमा का निर्माण सही अर्थो में और ठीक ढंग से कर सकते हैं। भारतीय आध्यात्मिकता उन्नायक, गरीबो के दुख–दर्द, दंश–दलन व भारतीय राष्ट्रवाद के प्रवक्ता के रूप में आपके विचार भारतीय जनमानस में आज भी प्रासंगिक है। प्रास्तावित शोध के माध्यम से हमारी यह धारणा ही नहीं बल्कि दृढ़ विश्वास है कि स्वामी विवेकानन्द के विचारों द्वारा स्थापित जीवन मूल्य सनातन है, चिरन्तन है, शाश्वत है; यह वजह है की आज के बदलते परिदृश्य में वे उतने ही सार्थक एवं प्रासंगिक है, और आने वाले समय भी उससे अधिक रहेगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्क मेरी लुईः स्वामी विवेकानन्द इन अमेरिका, न्यु डिस्कवरीज, कलकत्ता, 1966
2. स्वामी गम्भीरा नन्दः विवेकानन्द संहित, अद्वैत्य आश्रम कलकत्ता, जन्म सति संस्करण, खण्ड 1 से 7, 1962
3. स्वामी गम्भीरा नन्दः युगनायक विवेकानन्द, रामकृष्णमठ, नागपुर, भाग 1 से 3, पंचम संस्करण–2005
4. शरण श्रीः विश्वात्मा पुरूष विवेकानन्द, कविता बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002
5. शर्मा ओम0 प्रकाशः स्वामी विवेकानन्द, सधना पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण, 2006
6. शर्मा अरूण दत्तः भारतीय राजनैतिक विचारक, यूनिक पब्लिसर्श, नई दिल्ली, 2009
7. शर्मा उर्मिला, एस0के0ः भारतीय राजनैतिक चिन्तन, एलानटिक पब्लिसर्श एण्ड डिस्ट्री ब्यूटर्स नई दिल्ली, 2001
8. शर्मा योगेन्द्र, बघेल सी0एल0ः भारतीय राजनितिक चिन्तन, अलका प्रकाशन, कानपुर 2005
9. रोमा रोलांः लाइफ ऑफ विवेकानन्द, पंचम संस्करण, कोलकाता, 1965
10. मुखर्जी विश्वनाथः भारत के महान योगी, अनुराग पब्लिकेशन्स, चौक वराणसी,
11. यादव डा0 विरेन्द्र सिंहः स्वामी विवेकानन्द संस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरिः अल्फा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013
12. संतीया सुभाषः देश भक्त समाजसेवी स्वामी विवेकानन्द, अनिल प्रकाशन, दिल्ली।
13. सैयद डी0एम0एच0ः स्वामी विवेकानन्द हिमालय बुक्स प्रा0लि0 मुम्बई, 2011
14. हर्षव्रदानः विवेकानन्द जीवन और दर्शन, माया प्रकाशन मन्दिर, जयपुर।
15. अंग्रेजी पुस्तकें
16. A Chorus of path As heard in the Parliament of Religions, with an I an introduction by jenkin. liod jones(1893)
17. Barrows, John Henry: The word's Parliament of Religions, (1693)
18. Dr, Paul Carus: the Dawn of a New Religions, Era(1899)